सीताराम सीताराम सीताराम

श्री जानकीवल्लभोविजयते

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

श्रीमते टीलाचार्याय नमः

श्रीमते मङ्गलाचार्याय नमः

श्रीराममन्त्रानुसन्धाननिरतं श्रीरामतत्त्वप्रकाशक
शतकोटिरामायणकर्ता महर्षि वाल्मीकि कृत

तत्त्वत्रयबोधः

अथसर्वशास्त्रनिष्णातपण्डितराजस्वामि
श्रीहरिकृष्णाचार्यप्रणीतं

तत्त्वत्रयदर्पणम्

सीताराम सीताराम सीताराम

श्री राम मन्त्रराज परम्परा -

परधाम्नि स्थितो रामःपुण्डरीकायतेक्षणः ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ ॥१॥

श्रियः श्रीरपि लोकानां दुखोद्धरणहेतवे ।
हनूमते ददौ मन्त्रं सदा रामाङ्घ्रिसेविने ॥२॥

ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥३॥

मन्त्रराजजपं कृत्वा धाता निर्मातृतां गतः ।
त्रयीसारमिमं धातुर्वसिष्ठो लब्धवान् परम् ॥४॥

पराशरो वसिष्ठाच्च सर्वसंस्कारसंयुतम् ।
मन्त्रराजं परं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥५॥

पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवतीसुतः ।
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृंहणम् ॥६॥

व्यासोऽपि बहुशिष्येषु मन्वानः शुभयोग्यताम् ।
परमहंसवर्य्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥७॥

शुकदेवकृपापात्रो बह्मचर्यव्रतेस्थितः ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवीं गतः ॥८॥

स चापि परमाचार्यो गङ्गाधराय सूरये ।
मन्त्राणां परमं तत्त्वं राममन्त्रं प्रदत्तवान् ॥९॥

गङ्गाधरात् सदाचार्यस्ततो रामेश्वरो यतिः ।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतोऽभवत् ॥१०॥

देवानन्दस्तु तच्छिष्यः श्यामानन्दस्ततोऽग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततोऽभवत् ॥११॥

पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान् ।
हर्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाङ्घ्रिसेवकः ॥१२॥

हर्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्ददेशिकः ।
यस्य वै शिष्यतां प्राप्तो रामानन्दः स्वयं हरि ॥१३॥

तस्माद् गुरुवारल्लब्ध्वा देवानामपि दुर्लभम् ।
प्रादात्तुभ्यमहन्तात गुह्यं तारकसंज्ञकम् ॥१४॥

एवं परम्परा सौम्य प्रोक्ता श्रीसम्प्रदायिनाम् ।
मन्त्रराजस्य चाख्यातिर्भूम्यामेवमवातरत् ॥१५॥

इति श्रीअनन्तानन्दाचार्यकृतं श्रीराममन्त्रराज-परम्परास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

वन्दे रामं परं ब्रह्म कल्याणगुणवारिधिम् ।
सर्वज्ञं दिव्यदेहञ्च रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥१॥
टीलाचार्य व्रतीन्द्रं च मङ्गलार्य मुनीश्वरम्नत्वा
गुरुञ्च कुर्वेऽहं तत्त्वत्रोधाय दर्पणम् ॥२॥

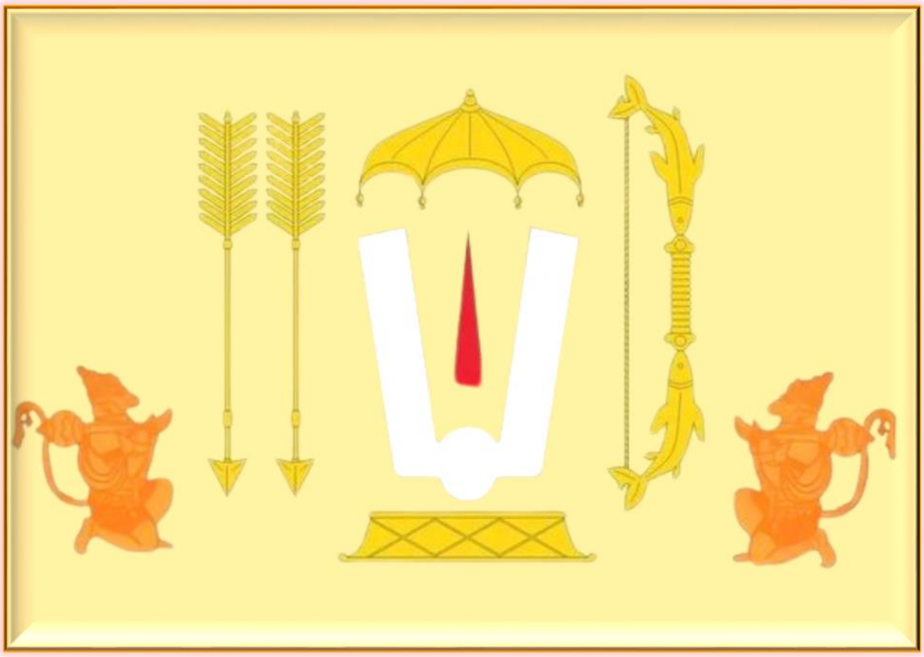

भूमिका

आदरणीय वेदान्तप्रेमी बन्धुओं !

निखिलब्रह्मण्डनायक कल्याणगुणगणार्णव परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीजानकीनाथजी की अनुपम अनुकम्पा से यह **तत्त्वत्रयबोध** नामक ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो रहा है। यह ग्रन्थ परमआर्ष सर्वोत्कृष्ट विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तानुकूल वेदान्ततत्त्व का प्रकाशक तथा 'श्रीरामानन्दवेदान्त' में प्रवेश करनेवाले जिज्ञासुओं का अद्वितीय सहायक है । यह निबन्ध **नारदपञ्चरात्रान्तर्गत श्रीवाल्मीकिसंहितास्थ** आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजी तथा ऋषियों का संवादरूप है ।

श्री १११०८ जगद्गुरु श्रीमङ्गलदासजी महामुनीन्द्र द्वारा स्थापित डाकोरतीर्थस्थ श्री टीलाद्वारागादी के वर्तमानकालीन सभापण्डित पण्डितराज स्वामीश्री हरिकृष्णाचार्यजी ने लोकोपकारार्थ उक्त तत्त्वत्रयबोधकी तत्वत्रयदर्पणनामक हिन्दी टीका करके महान उपकार किया है। इन श्री पण्डितजी महाराज ने अनेकों वैष्णवों को संस्कृत पढ़ाकर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की उत्तम सेवा की है । तथैव श्रीगलतापीठोद्धारादि द्वारा सम्प्रदायके एकमात्र सफलता प्राप्त कलहरहित 'सन्त' पत्र के प्रकाशक और सम्पादक जयपुर के लडीवाले श्रीमान् शेठ श्रीवंशीधरजी तथा श्रीमान् शेठ श्रीमनोहरलालजी ने सन्त पत्र के श्रीरामानन्दांक में उक्त दोनों निबन्धों को प्रकाशित किया है। तदर्थ धन्यवाद ।

आदिकवि महर्षिवाल्मीकिप्रोक्तः

तत्त्वत्रयबोधः

ऋषय उचुः -

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते तत्वत्रयमुदीरितम् ।
तच्छ्रोतुमभिवाञ्छामः कृपया ब्रूहि नः प्रभो ॥१॥

(वाल्मीकि संहिता अध्याय २ श्लो. ४३)

ऋषियों ने कहा - हे प्रभो ! विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में तीन तत्त्व कहे गये हैं। हम उन्हें श्रवण करना चाहते हैं। आप कृपाकर कहें ।

तत्त्वत्रयदर्पण टीका -

इस प्रकार की जिज्ञासा से विदित होता हैं कि ऋषियों को विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त ही अभिमत है । विशिष्टाद्वैत, द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत तथा अचिन्त्यभेदा भेद इत्यादि वेदान्तसिद्धान्तों में श्रीसम्प्रदायाचार्य आचार्यसार्वभौम आनन्दभाष्यकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है ।

यह आचार्यपाद ने स्वयं ही लिखा है कि 'एवञ्चाखिलश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणसामञ्जस्यादुपपत्तिवलाच्च विशिष्टाद्वैतमेवास्य ब्रह्ममीमांसा शास्त्रस्य विषयो न तु केवलाद्वैतम् ।' (आनन्दभाष्य १.१.१)

अर्थ - इस प्रकार सम्पूर्ण श्रुति स्मृति इतिहास तथा पुराण इत्यादिकों के सामञ्जस्य (सङ्गति) होने से तथा उपपत्ति (युक्ति) के बल से विशिष्टाद्वैत ही इस ब्रह्ममीमांसा शास्त्र का विषय है, केवलाद्वैत नहीं । भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त मानने में बोधायन वृत्तिकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्य नामक महर्षि बोधायन इत्यादि अपने पूर्वाचार्यों का तथा उक्त आर्षमत का ही अनुसरण किया है ।

सभी श्रुति स्मृति तथा महर्षिवचनों का पक्षपातरहित समन्वय इसी विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में होता है इसलिये विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का ही दूसरा नाम समन्वयसिद्धान्त भी है ।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में चित् ,अचित् और ईश्वर ये तीन तत्त्व माने गये हैं । इन्हीं तीनों तत्त्वों का वर्णन श्री वाल्मीकिजी ने उक्त प्रकार से आरब्ध किया है। उक्त श्लोक नारदपञ्चरात्र की

संहिताओं में परिगणित श्रीवाल्मीकिसंहिता के दूसरे अध्याय का ४३ तेतालीसवां श्लोक है | मैंने तत्त्वत्रयबोध निबन्ध के क्रम में उसे प्रथम श्लोक लिखा है। यह ध्यान में रखनेयोग्य है ॥१॥

धन्या यूयं यतस्तत्त्वत्रय बोधस्य लिप्सवः ।
शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथयामि समीहितम् ॥२॥

महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने कहा कि हे मुनियो आप लोग धन्य हैं। क्योंकि तत्त्वत्रयबोध (तत्त्वत्रयके ज्ञान) के चाहनेवाले हैं। मुनियो सुनो। आपलोगों की अभिलषित वस्तुको कहता हूं ॥२॥

मुमुक्षोश्चेतनस्यैव तस्य ज्ञानमपेक्षते ।
चिदचिदीश्वरश्चैतत्तत्त्वत्रयमितीरितम् ॥३॥

मुमुक्षु चेतनको उस (तत्त्वत्रय) का ज्ञान अपेक्षित ही है । चित् (जीव) अचित् (अचेतन) और ईश्वर (ब्रह्म = भगवान् श्रीरामजी) इन्हीं तीन तत्त्वों के समुदाय को तत्वत्रय कहा गया है ॥३॥

परीक्ष्य लोकानित्यादिश्रुत्युक्तेन क्रमेण च ।
मुमुक्षा जायते पूर्वं तच्चज्ञानाच्च सर्वदा ॥४॥

" परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् । नास्त्य कृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठम् ।"(मुण्डक)

अर्थ – कर्मद्वारा सम्पादित (प्राप्त किये हुए) स्वर्गादिलोकों की परीक्षा करके ब्राह्मण को वैराग्य प्राप्त करना चाहिये किये हुए कर्मों (केवल्यागादिकों) से अकृत अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। उस ब्रह्मतत्त्व को जानने के लिये समित्पाणि होकर अर्थात् हाथ में समिधू इत्यादि उपहारद्रव्य लेकर श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु की ही शरण में जाना चाहिये ।

उक्त श्रुति में कथित क्रम के अनुसार सर्वदा तत्वज्ञान के पूर्व में मुमुक्षा (मोक्ष की इच्छा) उत्पन्न होती है ॥४॥

आत्मा चित्पदसंग्राह्यो ज्ञानाश्रय इतीरणा ।
तस्य रूपमिदं ज्ञेयं वक्ष्यमाणमनुत्तमम् ॥५॥

चित् पद से आत्मा का ग्रहण होता है । अर्थात् चित् का अर्थ है आत्मा । वह आत्मा ज्ञानाश्रय (ज्ञाता) कहा गया है। उस आत्मा का सर्वोत्तम रूप अग्रिम कथनानुसार जानना चाहिये ॥५॥

देहेन्द्रियमनः प्राणबुद्धिभ्यश्च विलक्षणम् ।

अजडं नित्यमव्यक्तं निर्विकारमतीन्द्रियम् ॥६॥

आत्मा का स्वरूप देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि (धर्म-भूतज्ञान) से विलक्षण है । अजड़ (स्वयंप्रकाश) नित्य (उत्पत्ति विनाशशून्य) अव्यक्त (घटपटादि पदार्थोंके सजातीय रूपसे अग्राह्य) निर्विकार (विकारशून्य= सर्वदा एकरूपसे रहनेवाला) अतीन्द्रिय (शुद्ध चित्तके बिना और किसी भी इन्द्रिय से न जानने लायक) है ॥६॥

श्री ११०८ श्रीसाकेतनिवासाचार्य नामक जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी महाराज ने भी प्रबोधकलानिधि में कहा है कि – "प्रज्ञाप्राणशरीरतः करणतो भिन्नाः समे प्राणिनः ॥८॥"

शिक्षासुधा में भी कहा है कि "देहेन्द्रियधीप्राणते जीवात्मा नित भिन्न ।"

नियाम्यं धार्यमीशस्य शेषं तस्य च शेषिणः ।
अणु चानन्दरूपञ्च ज्ञेयं रूपं चिदात्मनः ॥७॥

चिदात्मा (जीवात्मा) का स्वरूप ईश अर्थात् भगवान् श्रीरामजी का नियाम्य धार्य तथा उन्ही शेषी भगवान् श्रीरामजी का शेष (चन्दन कुसुम इत्यादिके समान सर्वथा उपयोग के योग्य) भी है । अणु और आनन्दरूप है ॥७॥

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी ने भी कहा है कि 'टीला' धार्य नियाम्य अरु सीतावर को शेष । (शिक्षासुधा)

डाकोरस्थ श्रीटीलाद्वारपीठ (डाकोरकी श्रीटीलाचार्यगादी) के संस्थापक श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीमङ्गलदासजी महामुनीन्द्रने भी वेदान्त - चिन्तामणि में कहा है कि -

शेषस्तनू रघुपतेरणुचेतनोंऽशश्चान्यो मतेर्हि करणाद्वपुषोऽप्यसुभ्यः

श्रीब्रह्माजीने भी कहा है कि 'जगत् सर्व शरीरं ते '

अर्थ – हे भगवान् श्रीरामजी यह चेतनाचेतनात्मक समस्त जगत् आपका शरीर है।

अपृथक्सिद्धिसम्बन्ध से जो सर्वथा धार्य नियाम्य और शेष होता है वही चेतन का शरीर कहा जाता है ।

दाहे तु पातकाभावान्न देहश्चात्मसंज्ञकः ।
इन्द्रियाणामचैतन्यान्न तान्यपि स चेतनः ॥८॥

आत्मा के नाशक (हत्यारे) को पातकी कहा गया है । परन्तु मरने के पश्चात् शरीर के दाह करने वाले को पातक नहीं लगता । इस लिये देह आत्मा नहीं है । इन्द्रियों के चैतन्य (चेतनता) न होने से इन्द्रियां भी वह चेतन (जीव) नहीं हैं ॥८॥

अनित्यत्वादनेकत्वात्तेषां नात्मत्वमीरितम्
यदि चक्षुर्भवेदात्मा नान्धो रूपं स्मरेत् क्वचित् ॥९॥

इन्द्रियों के अनित्य होने से और अनेक होने से इन्द्रियों का आत्मत्व नहीं कहा । अर्थात् अनित्य होने से और अनेक होने के हेतु से इन्द्रियों को आत्मा नहीं कहा गया । क्योंकि आत्मा नित्य और एक होता है ।

अब एक एक इन्द्रियों के आत्मत्व का खण्डन करते हैं — यदि चक्षु इन्द्रिय को आत्मा माना जाय तो अन्धा पुरुष कभी रूप का स्मरण न कर सकेगा । क्योंकि रूप का अनुभव करनेवाला चक्षुरूप आत्मा तो नष्ट हो चुका । यह नियम है कि जो जिसका अनुभव करता है वही उसे स्मरण कर सकता है ॥९॥

श्रोत्रस्य यदि चात्मत्वं स्वीकृतं स्यान्महर्षयः !
शब्दस्मृतिः पुनश्चात्र बाध्या स्यात् सर्वथाऽनघाः ॥१०॥

हे पापरहित महर्षियों ! यदि श्रोत्र इन्द्रिय का आत्मत्व माना जायगा तो श्रोत्र के नष्ट हो जाने पर बधिर (बहरे) पुरुष को शब्दानुभव करने वाले श्रोत्ररूप आत्मा के न होने से शब्द की स्मृति बाध्य होगी अर्थात् न होगी ॥१०॥

स्थूलोऽहमिति संवादो गुणीभूतो हि निश्चितः ।
तस्माद् देहस्य चात्मत्वं न स्यात् सिद्धं कदापि तु ॥ ११॥

'स्थूलोऽहम् ' (मैं स्थूल हूं) यह प्रतीति गौण है मुख्य नहीं । इस लिये देह का आत्मत्व कभी नहीं सिद्ध हो सकता है ॥११॥

अन्याधीनप्रकाशस्तु न स्याद् यश्च महर्षयः ।
अजडं तं विजानीथ ह्येषा शास्त्रीयकल्पना ॥१२॥

हे महर्षियो ! जिस पदार्थ का प्रकाश अन्य के अधीन न हो अर्थात् जो तत्व स्वयंप्रकाश हो उसे अजड जानो । यही शास्त्रीय मन्तव्य है ॥ १२ ॥

अजडश्चायमात्माऽस्ति स्वयं ज्योतिरितिश्रुतेः ।
बद्धा मुक्ताश्च नित्याश्च त्रिधाऽऽत्मानः समीरिताः ॥१३॥
'यत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति' इत्यादि श्रुति के प्रमाण से यह आत्मा अजड़ है | बद्ध मुक्त और नित्य भेद से जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं ॥१३॥

ब्रह्मादिकीटपर्यन्ता देवदानवमानवाः ।
तिर्यञ्चः स्थावराश्चापि बद्धाः संसारिणो मताः ॥१४॥

ब्रह्माजी से लेकर कीटपर्यन्त देव दानव मनुष्य पशु पक्षी तथा स्थावर (वृक्षलतादि) संसारी जीव बद्ध माने गये हैं ॥१४॥

ते चापि द्विविधा एके शास्त्राधीनत्वमागताः ।
परे चोच्छृङ्खला ज्ञेयाः शास्त्रधर्मपरिच्युताः ॥१५॥

वे बद्धजीव भी दो प्रकार के हैं । एक शास्त्राधीन दूसरे शास्त्रीय धर्म से पतित उच्छृंखल ॥१५॥

शास्त्राधीनाश्च विज्ञेयास्तत्त्वस्य प्रबुभुत्सवः।
मुक्षुत्वमुमुक्षुत्वभेदेन द्विविधा हि ते ॥१६॥

तत्व के जिज्ञासु प्राणियों को शास्त्राधीन जानना चाहिये । वे शास्त्राधीन दो प्रकार के हैं बुभुक्षु और मुमुक्षु ॥१६॥

बुभुक्षवो द्विविधाः प्रोक्ताः .... ।
अर्थकर्मपरा एके ततो धर्मपराः परे ॥१७॥

बुभुक्षु जीव दो प्रकार के होते हैं । एक अर्थ काम पर दूसरे धर्म पर ॥१७॥

ये च धर्मपरास्तेऽपि द्विविधाः सन्ति जन्मिनः ।
देवान्तरेषु संलग्नाः श्रीरामचरणेषु च ॥१८॥

जो धर्मपर हैं वे प्राणी भी दो प्रकार के हैं । एक देवतान्तर रत दूसरे श्रीरामचरणरत ॥१८॥

मुमुक्षवो द्विविधा ज्ञेयाः कैवल्या मोक्षमार्गिणः ।
शृणुध्वमृषयो वेदे मोक्षकामा द्विधा मताः ॥१९॥

भक्ताचाथ प्रपन्नाश्च भक्ताश्चापि द्विधा मताः ।
साध्यसाधनभेदेन भक्तेर्द्वैविध्यकारणात् ॥२०॥

कैवल्य और मोक्ष पर (सायुज्यमुक्तिपरायण) भेद से मुमुक्षु दो प्रकार के जानने चाहिये । हे ऋषियों सुनो ! वेद में मोक्ष चाहने वाले दो प्रकार के माने गये हैं। भक्त और प्रपन्न साध्य और

साधन भेद से भक्ति दो प्रकार की है । इसलिये भक्त भी दो प्रकार के हैं । साध्यभक्तिनिष्ठ और साधनभक्तिनिष्ठ ॥२०॥

प्रपन्ना बहुधा ज्ञेया मोक्षेच्छुश्च त्रिवर्गवान् ।
एकान्ती परमैकान्ती दृप्त आर्त्तश्च विश्रुताः ॥२१॥

प्रपन्न बहुत प्रकार के हैं । उनका क्रम इस प्रकार है - प्रपन्न दो प्रकार के होते हैं । मुमुक्षु और धर्म अर्थ काम रूप त्रिवर्ग पर । मुमुक्षु प्रपन्न भी दो प्रकार के होते हैं । एकान्ती और परमैकान्ती । परमैकान्ती दो प्रकार के होते हैं । दृप्त और आर्त्त ॥२१॥

भेदाश्च बहवः सन्ति बद्धानां तु महर्षयः ! |
मुक्ता निवृत्त संसारा उच्यन्ते वेदवेदिभिः ॥२२॥

हे महर्षियों ! बद्धजीवों के उक्त बहुत भेद है। जिन जीवों की संसारावस्था (जन्ममरणावस्था) निवृत्त हो जाती है उन्हें वेद वेत्ता लोग मुक्त कहते हैं ॥२२॥

सूर्यमण्डलमाभिद्य सूर्यलोकमवाप्य च ।
विरजां सम्प्रतीर्याथ वैकुण्ठं सम्प्रविश्य च ॥२३॥

अब मुक्तों कि स्थिति स्पष्ट रूप से कही जाती है । सूर्य मण्डलको भेदकर सूर्यलोक को प्राप्त होकर तथा विरजा नदी को पार करके वैकुण्ठ में प्रविष्ट होकर ॥२३॥

तत्र हनुमदादींश्च साष्टाङ्गं प्राणिपत्य हि ।
श्रद्धया परया युक्ता आचार्यानितरांस्तथा ॥२४॥

वहां श्रीहनुमान्जी आदि नित्यपार्षदों को तथा अन्यान्य पूर्वाचार्यों को परमश्रद्धा से साष्टाङ्ग प्रणाम कर ॥२४॥

भगवन्तं रामचन्द्रं धनुर्बाणविभूषितम् ।
श्रियः श्रिया च जानक्या कमले च विराजितम् ॥२५॥

दिव्यासनसमासीनं दिव्यभूषणभूषितम् ।
ब्रुवाणा नाथनाथेति प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥२६॥

स्वांके श्रीरामचन्द्रेण करुणासागरेण च
स्थापिताश्च महाभागास्तेनैव च कटाक्षिताः ॥२७॥

ब्रह्मानुभवकर्त्तारो मुक्ता उच्यन्त आस्तिकैः ।
संसारमनवाप्तास्तु नित्या हनुमदादयः ॥२८॥

धनुर्बाण तथा दिव्यभूषणों से विभूषित श्री की भी श्री श्रीजानकीजी के साथ में कमल के ऊपर दिव्यसिंहासन पर विराजित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करके हे नाथ हे नाथ इस प्रकार से दैन्य स्वर से पुकारते हुए, और करुणासागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपने अङ्क (गोद) में स्थापित किये हुए, उन्हीं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से कृपाकटाक्ष द्वारा देखे हुए ब्रह्मानुभव करने वाले महानुभाव आस्तिकों द्वारा मुक्त जीव कहे जाते हैं। और जो कभी भी संसारावस्था अर्थात् जन्ममृत्यु चक्र को नहीं प्राप्त होते हैं वे श्रीहनुमानजी इत्यादि नित्य जीव हैं ॥२५-२८॥

ज्ञानेन यद्विहीनं तद्व्रयचित्तत्त्वं निगद्यते ।
शुद्धसत्त्वमिश्रसत्त्व सत्त्वशून्य विभेदतः ॥२९॥
त्रिविधं तस्य भेदास्तु ज्ञेया सर्वे मनीषिभिः ।

जो ज्ञान से शून्य है वह अचित् तत्त्व कहा जाता है वह शुद्धसत्व, मिश्रसत्व और सत्वशून्य भेद से तीन प्रकार का है । उसके सर्वभेद विद्वानों से जान लेना चाहिये । शुद्ध सत्व को ही त्रिपाद विभूति परधाम अथवा मोक्षधाम कहते हैं । मिश्र सत्य प्रकृति को कहते हैं । इसके चौबीस भेद हैं । मूलप्रकृति महत्तत्त्व अहङ्कार मन श्रोत त्वक चक्षु रसना प्राण वाक् वाणि पाद पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग) इत्यादि एकादश इन्द्रियां शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध नामक पञ्च तन्मात्रा तथा आकाश वायु तेज जल और पृथिवी नामक पञ्च महाभूत । सत्यशून्य तत्व काल को कहते हैं । यह भूत वर्त्तमान और भविष्यद् भेद से तीन प्रकार का होता है । काल के एक होने पर भी उपाधिभेद से निमिष कला आदि बहुत भेद हैं । इनका निरूपण श्रीटीलाचार्यजीकृत शिक्षासुधा इत्यादि ग्रन्थों में बहुत सुन्दर है ॥२९-३०॥

ईश्वरः सर्वभूतानाम आदिकारणमुच्यते ॥३०॥
सर्वज्ञो ज्ञानशक्त्यादि कल्याणगुणभूषितः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रदाता रघुनन्दनः ॥३१॥

दिव्यविग्रहसंयुक्तो अनन्तानन्दो जगत्पतिः ।

ईश्वर (भगवान् श्रीरामजी) सर्वभूतों के आदिकारण कहे जाते हैं । सर्वज्ञ तथा ज्ञान शक्ति इत्यादि कल्याण गुणों से अलङ्कृत हैं। धर्म अर्थ काम और मोक्ष नामक चतुर्विध पुरुषार्थों को देने वाले अनन्त आनन्द को देने वाले दिव्यदेह से युक्त जगत्पति भगवान् श्रीरघुनन्दन ही सर्वेश्वर हैं ॥३१॥

यद्यप्यार्तिहरो रामोह्यन्तर्यामी महाप्रभुः ॥३२॥
तथाप्यात्मकृतैः पापैर्न कदापि स बध्यते ।

आर्ति (दुःख) का हरण करने वाले महाप्रभु भगवान् श्रीरामजी यद्यपि अन्तर्यामी हैं तथापि जीवों के किये हुए कार्यों से वे कभी भी नहीं बंधते हैं ॥३२॥

यथा बालाद्यवस्थाभिर्न जीवो दूष्यते क्वचित् ॥३३॥
तथाऽन्तश्चरमाणोऽपि न भवेद् दूषितो हरिः ।'

जैसे बाल्य यौवन आदि अवस्थाओं से जीव दूषित नहीं होता है उसी प्रकार अन्तर में रमण करने वाले भगवान् भी जीवों के कृत्यों से दूषित नहीं होते हैं ॥३२॥

परव्यूहादिभेदेन विज्ञेयः स च पञ्चधा ॥३४॥

पर व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार भेद से वह ईश्वर पांच प्रकार का जानना चाहिये ॥३४॥

बहुभिर्द्वारपालैश्च कोटपालैश्च संयुतः
महामणिसमाकीर्णे मण्डपे च विराजितः ॥३५॥

बहुत से द्वारपाल और कोटवालों से युक्त तथा महामणि जडित मण्डप में विराजित हैं ॥३५॥

शोभया परया युक्तः किरीटकुण्डलादिभिः ।
महाराज्या च जानक्या भूलीलाभ्याञ्च सेवितः ॥३६॥
परो हि भगवान् रामः परे लोके सुशोभितः ।

किरीट कुण्डलादिकों और परमशोभा से युक्त महाराणी श्रीजानकीजी तथा भूलीला देवियों से सेवित परलोक में (सर्वलोकों से पर लोक श्रीसाकेत में) सुशोभित भगवान् श्रीरामजी ही 'पर' ईश्वर हैं ॥३६॥

सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नोनिरुद्ध इति भेदतः ॥३७॥
विज्ञेयथ त्रिधा व्यूहो जगत्सृष्ट्यादिकारकः ।
पूर्णो ज्ञानबलाभ्याञ्च सङ्कर्षण इतिस्मृतः ॥३८॥

वीर्यैश्वर्ययुतस्तत्र प्रद्युम्न इति कथ्यते ।
शक्तितेजोविशिष्टस्तु ह्यनुरूद्ध इतीरितः ॥३९॥

सङ्कर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इस भेद से जगत्सृष्टिस्थित्यादि कारक 'व्यूह' तीन प्रकार का है । ज्ञान और बल से पूर्ण व्यूह को 'सङ्कर्षण' कहते हैं, वीर्य और ऐश्वर्य से युक्त व्यूह को 'प्रद्युम्न' कहते हैं तथा शक्ति और तेज से युक्त व्यूह को 'अनिरुद्ध' कहते हैं ॥३७-३८-३९॥

ते मत्यस्यादिर्विभवो ज्ञेयो मुख्यो गौणश्च स द्विधा ।
उपास्यः पुरुषैर्मुख्यो न च गौणः कदाचन ॥४०॥

मत्स्यादि तत्तत्सजातीय रूप से 'पर' ईश्वर का (भगवान श्रीराम जी का) जो आविर्भाव (अवतार) होता है वह 'विभव' कहा जाता है | मुख्य और गौण भेद से विभव दो प्रकार का है। मनुष्यों को मुख्यावतार की ही उपासना करनी चाहिये । गौण अवतार की उपासना कभी नहीं करना चाहिये ॥४०॥

सर्वत्र सर्वदा यस्तु जीवांस्त्यक्तुं न च क्षमः ।
अन्तर्यामी स विज्ञेयो जीवदोषैरदूषितः ॥४१॥

सर्वत्र तथा सर्वदा अर्थात् गर्भ तथा नरकादि निकृष्ट अवस्थाओं में भी जीवों का त्याग करने में असमर्थ तथा जीव दोषों से अदूषित 'ईश्वर' को अन्तर्यामी जानना चाहिये ॥४१॥

देशकालादिनियमै रहितश्च महाप्रभुः ।
धातुपाषाणकाष्ठादि कृतविग्रहमाश्रितः ॥४२॥

श्रीरामः स परं ब्रह्म जानकीसहितो विभुः ।
अर्चावतारो विज्ञेयः कृपाशीलो गुणाम्बुधिः ॥४३॥

देशकालादि के नियम से रहित महाप्रभु धातु पाषाण तथा काष्ठादिकों के किये हुए विग्रह (मूर्तिरूप शरीर) का आश्रय किये हुए श्रीजानकीजी के सहित विभु कृपाशील और गुणसिन्धु परब्रह्म उन भगवान् श्रीरामजी को ही अर्चावतार जानना जाहिये ॥४२॥ -॥४३॥

एवं पञ्चप्रकारेण ह्येऽपि स महाप्रभुः
विभक्तो भगवान् रामः सर्वलोकैकरक्षकः ॥४४॥

सर्वलोकों के अद्वितीयरक्षक महाप्रभु वे भगवान् श्रीरामजी एक हैं तो भी उक्त प्रकार से पांचरूप में विभक्त हैं ॥४४॥

सेवितः परया भक्त्या सन्तुष्टः स हरिः सदा ।
स्वाश्रितेभ्यश्च दासेभ्यः सायुज्यं सम्प्रयच्छति ॥४५॥

इति तत्त्वत्रयबोधः ।

परमभक्ति से सेवित होने पर सन्तुष्ट हुए वे भगवान् हरि (पाप के हरण करने वाले भगवान् श्रीरामजी) सदा स्वाश्रित दासों को (स्वसेवकों को) सायुज्य मुक्ति देते हैं ॥४५॥

श्रीहरिकृष्णदासेन पण्डितराजेन निर्मितम् भूयाच्छ्रीरामतोषाय सत्तत्त्वत्रयदर्पणम् ॥